International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN : 2581-9925, Impact Factor: 6.882, Volume 05, No. 01(II), January - March, 2023, pp. 61-66

हिन्दी साहित्य में आदिवासी संघर्षः एक चिंतन

डॉ. रामेश्वर प्रसाद मीना*

प्रस्तावना

भारत के संविधान की पाँचवी अनुसूची में अनुसूचित जनजाति शब्द का उल्लेख किया गया है। संस्कृत साहित्य में इन्हें 'अताविक' अर्थात वनवासी, गिरिजन अर्थात आदिवासी व मूल निवासी कहा जाता है। आदिवासियों का अपना स्वतंत्र धार्मिक अस्तित्व है जो इस्लाम एवं वैदिक धर्म से अलग तथा तान्त्रिक शैव आदि से मिलता जुलता है। जनजाति या आदिवासी से तात्पर्य, देश के मूल एवं प्राचीन निवासियों से है। ये प्रारंभ से ही दूरस्थ एवं निर्जन स्थानों पर निवास करते हैं। यही कारण है कि आधुनिक युग में विकास के साधनो और शहरो में बढ़ती आधुनिकीकरण के बावजूद बहुत कम प्रभाव जनजातियों पर पड़ा है। 19वीं शताब्दी में जब बहुत सारे लोग धर्म परिवर्तन कर रहे है, जब जनजातियों का भी हिन्दु धर्म की ओर रुझान बढ़ा किन्तु आदिवासियों ने अपने अस्तित्व और संस्कृति को बनाये रखा। आदिवासी प्रकृति के उपासक रहे हैं। वे आदिम धर्म को मानते है जो कि सर्वजीववाद के सिद्धांतो का प्रतिपादन करता है, जिसमे भूत– प्रेत तथा आत्माओं की पूजा का विशेष स्थान है।

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में जनजातियों का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान रहा है। भारत में आदिवासीयों को देश में सबसे पिछड़ों वर्ग में रखे जा सकते है। विश्व में आदिवासियों की संख्या के आधार पर सर्वाधिक संख्या भारत में पाई जाती है। भारत भौगोलिक दृष्टि से विशाल आकार वाला देश है। भोगोलिक विशेषता के कारण यहाँ अनेक जनजातियां निवास करती है जो आज भी सभ्यता से पर्याप्त दूर है। अनेक जनजातियां सुदूर जंगलो, पहाड़ो तथा पठारी क्षेत्रों में अपना जीवन यापन करती हो इसलिए सभ्य समाजो से काफी दूर है। आदिवासी ऐसा समुदाय है जो एक सामान्य क्षेत्र, भाषा, संस्कृति और कुछ विश्वास तथा प्रथाएँ है। धर्म के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आदिवासियों का धर्म जीववाद है। हटन (1963) औए बेली (1960–263) का मत है कि आदिवासीयों का धर्म हिन्दु नही है बल्कि जीववादी है। जीववाद की प्रमुख विशेषताएँ है सभी जड़ या चेतन वस्तुओं की स्थायी या अस्थायी रूप से आत्मा होती है सभी क्रियाकलाप इन्ही आत्माओं द्वारा कराये जाते है आत्माओं का मनुष्य के जीवन पर अधिकार होता है। मनुष्य आत्माओं द्वारा कब्जे में रखे जा सकते है। उन पर जादू का प्रभाव पड़ सकता है। यह कहना गलत होगा कि हिन्दु जाति के लोग आत्माओं, भूतो और जादू में विश्वास नही करते। इसी प्रकार ऐसे बहुत से जनजाति लोग है जो हिन्दू देवी देवताओं की पूजा करते हैं। हिन्दु त्योहारो और मेलों का आयोजन करते हैं। और हिन्दू रीति–रिवाजो और संस्कारों को मानते हैं।

आदिवासी जन भौगोलिक दृष्टि से अलग– अलग भू भागो, पहाड़ो, जंगलों आदि में रहते हैं लेकिन जातिवादी हिन्दू मैदानों में रहते है। मूल सभ्यता से अलग रहने तथा उनसे कम सम्पर्क के कारण वे हिन्दुओं की तुलना में कमजोर रह गये। संचार साधनो का उपयोग शहरों तक सीमित रहने के कारण आदिवासी मुख्यधारा से पिछड गये। आज के युग में भी दूर दराज के क्षेत्रों में रहने के कारण आदिवासी एकांकी जीवन तथा संसाधनों के अभाव की जीवन जीने को मजबूर है। भाषा की दृष्टि से भी आदिवासी समुदाय मुख्यधारा से कोसो दूर है। आदिवासी

* सह आचार्य–हिन्दी, स्व. राजेश पायलट राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बाँदीकुई, दौसा, राजस्थान।

समाज की अपनी बोली भाषा होती है। आदिवासियों का पिछड़ापन इसलिए भी हो गया कि मुख्य व्यवसाय खेती, जंगल से लकड़ी, गोंद, पत्ते आदि पर सरकारो ने कब्जा कर लिया। जल, जंगल और जमीनो पर आदिवासी अपना हक मानते है। किन्तु तथाकथित उच्चवर्गो के लोग जो सत्ता में काबिज है या सत्ता के आसपास अपना वजूद रखते है उन्होंने आदिवासियों से उनका हक छिनना शुरू कर दिया। इस तरह अदिवासी मूल निवासियों को ही उनके निवास से बेदखल करना शुरू कर दिया।

वैरियर एल्विन ने भारतीय जनजातियों के बारे मे 1943 में अपनी पुस्तक एबोरिजिनल्स में कहा कि "आदिवासी भारतवर्ष के वास्तविक स्वदेशी उपज है जिनकी उपस्थिति में प्रत्येक व्यक्ति विदेशी है। ये वे प्राचीन लोग है जिनके नैतिक आधार और दावे हजारों वर्ष पुराने हैं। वे सबसे पहले यहाँ आए। उन पर सबसे पहले विचार होना चाहिये।[1] भारतीय संदर्भ में भी विचारकों में जनजातियों के लक्षणों को लेकर पर्याप्त मतभेद पाया जाता है।फिर भी उनके बारे में अधिकतम सहमति होना आवश्यक है। भारतीय समाज के अन्य पिछडे वर्गो के साथ जनजातियों के लिए भी विशेष प्रावधान किये है। देश की जनजातियों की एक नयी परिभाषा भारतीय संविधान ने दी है। संविधान के अनुसार ये जनजातियों अब अनुसूचित जनजातियों ैण्ज्ण् कहलाती है। संविधान की धारा 342 के अनुसार राष्ट्रपति को यह अधिकार है कि वह सार्वजनिक सूचना द्वारा उन जनजातियों समुदायों के हिस्सों कों इस संविधान के अर्थ में अनुसूचित जनजातियों के नाम से घोषित करेगा।

प्राफेसर ए. आर देसाई ने उन जनजातीय समूहो जो अभी तक संस्कृतिकरण तथा आत्मसात्करण का विरोध करते आये है। उन्होने कुछ सामान्य लक्षणों पर प्रकाश डाला है। जो एक समय में पाये जाते थें सामान्य लक्षण इस प्रकार है–[2]

- वे सभ्य जगत से दूर पर्वतों व जंगलों में अत्यन्त दुर्गम स्थानों में निवास करते है।
- वे निग्रिटोज एस्ट्रोंलाईड अथवा मंगोलाईड में से किसी एक प्रजातीय समूह से सम्बन्धित है।
- वे समान जनजातीय बोली का प्रयोग करते है।
- वे आदिम धर्म को मानते है जो कि सर्वजीववाद के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता है, जिसमें भूत प्रेत तथा आत्माओं की पूजा का विशेष ध्यान है।
- वे जनजातीय व्यवसायों को अपनाते है जैसे प्राकृतिक उपयोगी वस्तुओं का संग्रह, शिकार, वन में उत्पन्न होने वाली वस्तुओं का संग्रह करना।
- वे अधिकांशतया मांस–भक्षी है।
- वे प्रायः नग्न, अर्द्ध नग्न अवस्था में रहते है तथा कपडों के स्थान पर पेड की छाल तथा पत्तों का प्रयोग करते है।
- आदिवासियों की आदते खानाबदोशी होती है तथा मद्यपान और नृत्य में विशेष रूचि रखते है।

आदिवासी समुदाय को भाषा व संस्कृति के साथ–साथ विकास के स्तरों के आधार पर भी विभिन्न अवस्थाओं में रखा जा सकता हैं। आदिवासियों की अर्थव्यवस्था विभिन्न अवस्था जैसे भोजन संग्रह करने की अवस्था से लेकर स्थानान्तरण कृषि, स्याही कृषि व्यवस्था तथा वर्तमान समय में स्थित औद्योगिकरण तक दिखाई देती है।

अप्रले मई 1957 में कोरायुत में आयोजित चतुर्थ जनजातीय कल्याण सम्मेलन में प्रस्तुत अपने लेख में टी.सी दास ने जनजातियों को मोटे तौर पर पांच भागो में विभाजित किया था–

- खानाबदोश, भोजन संग्रहीता और चारागाही ।
- पहाड़ी ढालों में स्थानांतरण कृषि करने वाली कृषक जनजातियां
- पठार तथा पहाड़ की तलहटी पर हल से खेती करने वाले स्याही कृषक।
- ऐसी जनजातियां जो आंशिक रूप से हिन्दू सामाजिक व्यावस्था में सम्मिलित हो चुकी है।
- अंततः ऐसी जनजातिया जो पूर्णतः हिन्दू समाज के साथ आत्मसात्कृत हो चुकी है तथा उन्ही के समान उद्योग धंधो मे लगी हुई हैं।3

कला की दृष्टि से जनजातियां अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है। मजूमदार के अनुसार आदिवासीयों में कलात्मक क्रियाकलापों में मूर्तिकला, चित्रकला, मौखिक साहित्य, संगीत और नृत्य ये सब सामान्य रुप से पाये जाते है। आदिवासियों में संगीत तथा नृत्य के शुरू से ही महत्व रहा है। अनेक धार्मिक एवं सामाजिक अवसरो पर जनजातीय गांवो में स्त्री–पुरुष एवं बच्चे एकत्रित होते है, जहाँ संगीत एवं नृत्य का आयोजन किया जाता है। आर्थर ने 1943 में लिखा था "दस वर्ष पूर्व तक भारतीय जनजातियो की कविता सभी जिज्ञासुओं के लिए एक वर्जित प्रदेश थी।" बौडिस बहुत–सी संथाल कविताओं को खालिस बकवास समझता था। ब्राउन का विश्वास था कि तांग्खुल (असम) की नागा जनजाति अपने उन अधिकांश गीतो को, जिसे वे गाती थी. समझती नही थी। हेमण्डार्फ ने असम के कोनयक नागाओं के गीतो के सम्बंध में लिखा था–बहुत से गीत एक अत्यन्त सीमित क्षेत्र में ही पूर्णतया समझे जाते है। यहाँ तक कि गायक भी बहुधा प्रत्येक शब्द का अर्थ नही बता पाता। गायक कहता है कि हम यो ही गाते है किन्तु साधारण बातचीत में इन शब्दों का प्रयोग कभी नही करते और न ही यह कह सकते है कि इनका ठीक–ठीक अर्थ क्या है।[4] लेकिन यह एक मिथ्या धारणा थी जिसमें धीरे–धीरे अध्ययन सम्पर्क एवं आदिवासी जन जीवन को वास्तव में पहचानने के दृष्टिकोण ने परिवर्तन लाने में सफलता प्राप्त की।

आदिवासी लोगो के गीतो के बारे में ऑर्थर ने लिखा है कि "सन 1935 में सांग्स आफ दि फॉरेस्ट के प्रकाशन ने स्थिति को बिल्कुल बदल दिया क्योंकि उसमें गोड कविता को को पारदर्शी और भावमूलक बताया गया था।" चार वर्षो के बाद दि बैगा के प्रकाशन ने अन्तिम रूप से रहस्यात्मक तत्त्वों को पूर्णतया भेद था, क्योंकि इसमें न केवल आदिवासी कविता को विस्तृत रूप में प्रस्तुत किया गया था, अपितु उसमे जनजातीय जीवन के आधार भूत तत्त्वों को भी प्रकट किया गया था। जहाँ अदिवासी कविता आदिवासी जीवन की सम्पूर्ण मनोवृत्तियों और विचारों की कुंजी के रूप में दिखाई गयी, वही उनके जीवन से इनकी सारी कविताओं का समधान और उत्तर मिल गया।

जनजातियों की कविताएँ उनके गीत एवं कला ही उनकी संस्कृति के अस्तित्व को बनाये हुए है। आत्मसात्करण की प्रक्रिया उन्हे अपनी स्वयं की संस्कृति से च्युत न कर दे, यह एक गम्भीर समस्या है तथा आधुनिकीकरण के प्रभाव से आने वाले परिवर्तनो से उन्हें अलग रखा गयी है। आदिवासी लोगो को अपनी संस्कृति से अलग रखा गया तो उनका सादगी से भरा जीवन और भी अधिक जटिल हो जायेगा।

ऑर्थर ने मुण्डा, उराँव, खडिया, हो तथा संथाल जनजातियों के गीतो का संग्रह किया है। आदिवासियो में संगीत एवं कला को सजग बनाये रखने मे अनेक सामाजिक एवं धार्मिक पर्वो का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उस दिन का इन्तजार आदिवासी लोग भी उत्सुकता के साथ करते है तथा ऐसे अवसरों पर प्रत्येक जनजातीय परिवार का सदस्य संगीत और नृत्य में भाग लेता है। इसके अतिरिक्त अदिवासियों की संगीतप्रियता में उनकी सामाजिक व्यवस्था का भी महत्वपूर्ण हाथ है। स्त्री–पुरुषों के बीच समानता ने इनके संगीत एवं नृत्य की कला का महत्व और भी अधिक बढ़ा दिया है। स्त्री–पुरुष घर में, खेतो मे व जंगल मे या नृत्य स्थली में समान रूप से मिलते है। यह स्थली स्त्री–पुरुषों के बीच प्रेम का अंकुर उभारती है। आदिवासी समाज इन्हें मान्यता प्रदान करता है।

आदिवासी मानव का मस्तिष्क कल्पना शून्य नही है। अपनी जाति की उत्पत्ति तथा सृष्टि रचना के सम्बंध में प्रत्येक जनजाति में भिन्न भिन्न धारणाएँ रही है जो कि बाद में आख्यान अपना कल्पित कथाएँ बन गई है। इन कथाओं में सृष्टि की उत्पत्ति तथा रचना के वर्णन के अतिरिक्त अनेक दैवीय घटनाओं का वर्णन भी होता है। जिनमें लोगो की अटूट विश्वास होता है। आदिवासी पौराणिक कथाओ की विषय वस्तु दृष्टि की उत्पत्ति, देवी देवताओं का वर्णन व अन्य प्राकृतिक घटनाओं से सम्बंन्धित होती है जबकि लोक–कथाएँ, स्वयं मानव व उसके दुःख–सुख, राजा रानी की कहानियां आदि तक सीमित होती है। लोक कथाओ का उद्देश्य मात्र मनोविनोद तक सीमित होता है जबकि पौराणिक कथाएँ किसी विषय–वस्तु की गहराई तक जाकर उसका रहस्योद्घाटन करती है। इसके अतिरिक्त पौराणिक कथाओं का उद्देश्य प्रथाओं, रीति रिवाजो, सामाजिक विधियों, निषेधो एवं नैतिक विचारों की पुष्टि करना होता है।

आदिवासी समाज के लोग कल्पित एवं दंत कथाओ को नाटक के रूप में प्रस्तुत करते है, हालाँकि ये नाटक रंगमंच पर खेले जाने वाले नाटको से बिल्कुल भिन्न प्रकार के होते है। समस्त ग्रामवासी एक बाड़े में एकत्रित

हो जाते है तथा संगीत एवं नृत्य के साथ ये नाटक खेले जाते है। नाटको के अलावा जनजातीय समाजो में कहावतो व पहेलियों का भी काफी मात्रा में प्रचलन पाया जाता है ये उनकी संस्कृति की धरोहर के रूप में मौखिक रूप में पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही है परंतु नगरीकरण, संस्कृतिकरण एवं औद्योगीकरण के फलस्वरूप आदिवासी संस्कृति सिमटती जा रही है।

आदिवासियों पर शोधकार्य बहुत कम किया गया है सर्वप्रथम बी. एच. बैंडेल पावेल ने 1899 में दि जर्नल ऑफ रॉयल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ ग्रेट ब्रिटेन एण्ड आयरलैंड में राजस्थान की आर्य प्रजातियों का अध्ययन किया। जानशार्ट ने मारवाड़ की जनजातियों की आदतो एवं व्यवहार का अध्ययन किया। इन विदेशी विद्वानो के अतिरिक्त 1866 में के. आर. एस. दास ने जयपुर तथा मेवाड़ के मीणा लोगो का अध्ययन. किया। शरतचन्द्र राय ने राजस्थान के राजसमंद की पहाडियों में रहने वाले भीलो की प्रथाओं का अध्ययन किया। बी. आर चौहान ने आदिवासियों के सांस्कृतिक इतिहास को बचाने के लिए कबीलीकरण की अवधारणा विकसित की तथा यह बताया कि रजपूतो से पूर्व राज्य के विभिन्न भागो के जनजाति के लोगो का प्रभावी नियंत्रण था।

राजस्थान की प्रमुख जनजातियों में मीणा जनजाति प्रमुख हैं। राज्य की कुल आदिवासी जनसंख्या का लगभग आधा भाग है। मीणा जनजाति को मुख्य रूप से दो भागो मे बाँटा जा सकता है। प्रथम क्षेत्र में वे लोग आते हैं जो दक्षिण–पूर्वी हिस्से में रहते है जिसमें चित्तौड़गढ़, डूंगरपुर, बांसवाडा व उदयपुर आते है। दूसरे क्षेत्र में वे लोग आते है जो भरतपुर, जयपुर, दौसा तथा सवाईमाधोपुर जिलो में निवास करते हैं। आर्थिक, सामाजिक स्थिति में ये क्षेत्र मे रहने वालो में से कुछ लोग अन्य जनजातियों की अपेक्षा थोडे से ठीक स्थिति में है। ये लोग शहरी जातियो के निकट सम्पर्क मे आने से थोडे इतराने भी लगे है। इन लोगो ने हिन्दू रीति–रिवाज, प्रथा आदि को अपना लिया है तथा अपने को हिन्दू जाति जैसा ही दिखाने का प्रयास करने लगे है। गरासिया जनजाति के लोग राजस्थान के सिरोही पाली डूंगरपुर, उदयपुर जिलों में फैले है। इनके गोत्र परमार, चौहान, राठौर आदि राजपूतो की तरह ही है ये लोग कृषि कार्य करते हैं। इन लोगो की स्त्रियों की स्थिति अन्य अदिवासी स्त्रियो से अपेक्षाकृत श्रेष्ठ है।

आदिवासी विमर्श की स्थिति हिन्दी साहित्य में भी कमोबेस समाज जैसी ही है। साहित्य में कविता, कहानी, उपन्यास आदिवासी कलम से रचा गया है इनमें से कविता सर्वाधिक महत्वपूर्ण है प्रमुख आदिवासी कविता संग्रहो में झारखण्ड की संथाली कवयित्री निर्मला पुतुल की नगाडें की तरह बजते शब्द रामदयाल मुंडा का नदी और उसके संबंधी तथा अन्य नगीत और वापसी, पुनर्मिलन और अन्य नगीत आदि है। बाजारवाद के इस दौर में आदिवासी कभी दौलत और कभी सरकारी नियमों के बल पर अपनी जमीन से बेदखल होकर पलायन करते रहे है। इसी वजह से आदिवासी भाषा एवं संस्कृति संकट में पड़ गई है। परम्परागत खेलो से लेकर आदिवासियों की लोक–कला तक विलुप्त होती जा रही है। हिन्दी साहित्य में आदिवासी गद्य साहित्य की शुरुआत बींसवी सदीं के आठवे दशक में हुई। वाल्टर भंगरा ने झारखण्ड अंचल और वहाँ के जीवन को केन्द्र में रखते हुए एक उपन्यास लिखा जिसका नाम है 'सुबह की शाम' इसे हिन्दी का पहला आदिवासी उपन्यास माना जाता है। इनके अलावा आदिवासी उपन्यासकारो में पीटर पाल एक्का ने 'जंगल के गीत' उपन्यास में तुबां टोली गांव के युवक करमा और उसकी प्रिया करमी के माध्यम से बिरसा मुण्डा के उलगुलान संदेश को देश दुनिया में पहुंचाया। यद्यपि आदिवासियों द्वारा लिखे गए उपन्यास समकालीन शिल्प और ढाँचो से दूर दिखाई देते है लेकिन असली मानव कल्याण की भावना इन्ही उपन्यासों में दिखाई देती हैं। गैर आदिवासी साहित्यकारो द्वारा आदिवासी जीवन पर लिखा गया या वर्णन किया गया वास्तविकता से कोसों दूर है।

हरिराम मीणा आदिवासी साहित्यकार होने के नाते उन्होंने अपना प्रसिद्ध उपन्यास 'धूणी तपे तीर' लिखा। जिसमें गोविन्द गुरु द्वारा भीलो–मीणों के बीच जागृति फैलाने संगठित करने और उन्हें अपने हक के लिए बोलना और लड़ना सिखाने तथा बलिदान के लिए तैयार करने की कथा है। हरिराम मीणा पुलिस अधिकारी होने के साथ स्वयं आदिवासी जीवन को जीने का अच्छा अनुभव रखने वाले साहित्यकार है। इनका यह उपन्यास 1913 ई. में राजस्थान के बांसवाड़ा आँचल में स्थित मानगढ़ पहाड़ी के आदिवासियों द्वारा सांमतो और औपनिवेशिक शक्तियों की साम्राज्यवादी मानसिकता के विरुद्ध गोविन्द गुरु के नेतृत्व में शांतिपूर्ण विद्रोह का बिगुल बजाया गया। जिसमे अंग्रेजो का साथ देने वाले तथाकथित भारतीयों द्वारा औपनिवेशिक दमन की

प्रतिक्रिया में हिंसक हमला कर हजारो की संख्या में आदिवासियों पर हिसंक हमला कर हजारो की संख्या में आदिवासियों पर हिंसक तरीके से धोखे के साथ प्राण हर लिये। राजस्थान के आदिवासीयों के बलिदान की यह सच्ची घटना है। इस उपन्यास में आदिवासी साहित्यकार–हरिराम मीणा ने आदिवासी–अस्मिता को शोषित–उत्पीड़ित वर्ग और शोषक वर्ग के बीच के वृहत्तर पारम्परिक संघर्ष के रूप में दिखाया है। कुछ अन्य आदिवासी उपन्यास लिखे गये जिनमे रमणिका गुप्ता का सीता–मौसी, कैलाश चन्द्र चौहान को 'भंवर' तथा रर्णेन्द्र का 'ग्लोबल गांव का देवता' आदि सम्मिलित है। स्वयं आदिवासीयों द्वारा लिखे गये हाल उपन्यासो में हरीराम मीणा का 'धूणी तपे तीर' सर्वाधिक लोकप्रिय उपन्यास है। इनके अतिरिक्त रर्णेन्द्र का 'ग्लोबल गाँव के देवता' आग और धातु की खोज करने वाली और धातु पिघलाकर उसे आकार देनेवाली कारीगर असुर जाति के जीवन का संतप्त सारांश है। छाती ठोक ठोककर अपने को अत्यन्त सहिष्णु और उदार करने वाली हिन्दुस्तानी संस्कृति ने असुरों के लिए इतनी भी जगह नही छोड़ी थी। कोई साहित्य नहीं, कोई इतिहास नहीं, कोई अजायबघर नहीं। विनाश की कहानियों के नहीं कोई संकेत मात्र ही नही उपन्यास के अंत तक असुर जनजाति की त्रासदी व्यापक समाज मे त्रासदी का प्रारूप बन जाती है। आदिवासियों पर इनके अलावा कुछ चर्चित पुस्तकें भी है। जिनमें द आदिवासी किला नॉट डांस या तो पुरुष आदिवासियों द्वारा लिखी गया साहित्य है या फिर आदिवासी से अलग और आदिवासी लेखको द्वारा लिखी गई। इन सब परिस्थितियों के बावजूद कुछ आदिवासी महिला लेखको ने भी अपनी आवाज बुलंद कर आदिवासियों के बारे में लिखा। आदिवासी महिला लेखको के लिए कई सम्मेलन भी हुए। साहित्य अकादमी ने झारखंडी भाषा साहित्य संस्कृति अखाला के साथ एक सम्मेलन किया। 2015 में प्रकाशित एलिस इक्का की कहॉनियों तथा 1950 व 1960 में लिखी गई लघु कहानियां भी है। इनकी कहानियों में महिला तथा प्रकृति प्रमुख रही है। आदिवासी महिलाओं की काहानी भी बया करती है। इनकी कहॉनियों में आदिवासी महिलाओं तथा पुरुषो के जीवन और संघर्ष को सरलता से दिखाया गया है। आदिवासियों के लोक गीतों और कविताओं को लेकर वंदना टेटे ने खूब साहित्य लिखा। आदिवासी समाज में मौखिक लोक साहित्य का खजाना भरा पड़ा है जिसको लिखित रूप नहीं दिया गया। इसलिए आदिवासियों का साहित्य गीत और संगीत में खूब पाया जाता है लेकिन लिखित रूप न के बराबर है। लोक गीतों और कहानियों में आदिवासी साहित्य है। किन्तु जब इसे साहित्य में लिखा गया ओरेचर कहलाया। वन्दना टेटे ने अपने साहित्य में लोक गीतो और कहानियों को जगह दी है। वैश्विक जनजाति समाज के संघर्ष, स्वाभिमन और जीवन की सच्ची तथा यथार्थ कहानी 'ग्लोबल गांव का देवता' मे देखने को मिलती है। इस उपन्यास में कटु यथार्थ, मात्र जीवन जीने की अभिलाषा, शाश्वत संघर्ष विरोध करता हुआ प्रशासनिक कार्यवाही में मारा जाता असुर जीते जी मृतवत बना दिया जाता है तब उपन्यास का कठोर सच उघड़ कर सामने आ जाता है। इन् असुरो को किस तरह अपने अस्तित्व को बचाए रखने एवं समाज मे बने रहने के लिए आन्दोलन करना पड़ता है और इनमें इस सामान्य से विरोध को भी नक्सली आन्दोलन का नाम दिया जाता है। शासन–प्रशासन के सहयोग से वेदांग जैसी कंपनिया इन आदिवासी लोगो को माइन्स बिछाकर उड़ा देती है यह सब देखकर, ग्लोबल गाँव का देवता खुश होता है। जो लड़ाई वैदिक युग से शुरू हुई थी हजार हजार इन्द्र जिसे अंजाम नही दे सके थे, ग्लोबल गांव के देवताओं ने वह मुकाम पा लिया था। 5 इस तरह यह उपन्यास झांरखण्ड के असुर आदिवासियों की संघर्ष गाथा का स्पष्ट और निर्मम चित्रांकन है। जो अपनी मृत्यु के खिलाफ लड़ रहे है, उसके विरुद्ध एक और 'ग्लोबल गांव के देवता' टाटा, वेदांत, हिंडाल्को जैसी कंपनियों है दूसरी और एम. ए. ए एम. जी. वही तीसरी ओर शिवदास बाबा जैसे पाखण्डी लोग । इस त्रिदलीय दुरभिसंधि में सामने संघर्षरत है–असुर जनजाति। ये अपनी नियति चुपचाप ग्रहण करने की मन स्थिति में नहीं, वरन संघर्ष करने के प्रति आस्थावान है। इन्हें दिखावे की लोकतंत्र नही वरन स्वतंत्र भारत चाहिए। एक ओर अपनी जमीन पर खनिजो से पसरी कमाई से सुन्दर शहर बसाए जा रहे है। वही उन्हें केवल दोयम दर्जे की मजदूरी से ही अभिशप्त रखा जा रहा है। यह अन्याय असुरो को कतई स्वीकार्य नहीं।

समाज की मुख्यधारा आदिवासियत को पूरा निगलना चाहती है। उपन्यासकार–जनजाति के संघर्ष को व्यापक समाज के संकट और संघर्ष का प्रतिनिधि बनाया है।

पूर्वोत्तर के राज्यो को छोड़कर अभी तक पश्चिम बंगाल के अलावा किसी भी राज्य में आदिवासियों को उनकी मातृभाषा में प्राथमिक शिक्षा नही दी जाती है। ऐसे में आदिवासी समाज कैसे विकसित होगा जिसे अपनी मातृभाषा से ही दूर रखा गया हो।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. "वैरियर एल्विन, दि एबोरिजिनल्स (ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, बम्बई 1943) पृ.–7–11
2. ए.आर, देसाई रूरल इंडिया इन ट्रांजिशन 1961 पृ. 51–52
3. मजूमदार तथा मदन, इन्ट्रोडक्शन टु सोश्यल एंथ्रोपोलॉजी 1957 पृ०–267–268
4. एक. हैमण्डार्फ "दि रूल ऑफ सोंग्स इन कोनयक कल्यचर" मैन इन इण्डिया 23 मार्च 1943 नं. 1
5. रणेन्द्र 'ग्लोबल गांव का देवता' नई दिल्ली भारतीय ज्ञानपीठ दूसरा संस्करण, 2014 पृ. 100

❖◆❖